इकाई 21 पुराणकालीन सभ्यता एवं संस्कृति

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 पुराणों का परिचय

21.3 संस्कृति और सभ्यता

21.4 पुराणों में धर्म की अवधारणा

21.4.1 भक्ति

21.4.2 मूर्तिपूजा

21.4.3 अवतारों की संकल्पना

21.4.4 तीर्थ माहात्म्य वर्णन

21.4.5 नामसंकीर्तन

21.5 पुराणों में अर्थ का स्वरूप

21.6 पुराणों में काम का स्वरूप

21.7 पुराणों में मोक्ष का स्वरूप

21.8 पुराणकालीन समाज

21.9 राजनीतिक स्थिति

21.10 आर्थिक स्थिति

21.11 सारांश

21.12 शब्दावली

21.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

21.14 अभ्यास प्रश्न

21.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- पुराणों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- पुराणकालीन संस्कृति के बारे में जान सकेंगे।
- पुराणकालीन सभ्यता को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
- पुराणकालीन सभ्यता और संस्कृति की विशेषतायें जान सकेंगे।
- पुराणों की संख्या जान सकेंगे।
- पुराणों का प्रतिपाद्य विषय समझ सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पहले आपने सभ्यता और संस्कृति के बारे में अध्ययन किया और यह जाना कि सभ्यता और संस्कृति एक दूसरे से अनुस्यूत होकर भी एक दूसरे से पृथक्

हैं। संस्कृति का सम्बन्ध आत्मा, मन तथा अन्तःकरण से निश्चित होता है। सभ्यता संस्कृति का अंग है। सभ्यता से मानव की भौतिक प्रगति का परिज्ञान होता है। सभ्यता किसी देश के मनुष्य के जीवनयापन, सुख सुविधा, रहन-सहन आदि बाह्य तत्त्वों से सम्बद्ध होती है जबकि संस्कृति उसके अन्तःतत्त्वों से सम्बद्ध होती है। इस इकाई में आप पुराणकालीन सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन करेंगे। पुराणों का काल निर्धारण एक बड़ी समस्या है क्योंकि पुराणों की रचना लम्बे समय तक होती रही। भारतीय विचारधारा पुराणों को प्राचीनतम सिद्ध करती है किन्तु पाश्चात्य मनीषी इन्हें नवीन सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। यह हठ उनकी वितृष्णा को ही सूचित करता है तथापि पार्जिटर जैसे विद्वान् वायु पुराण को ईसा पूर्व तीसरी शतक की रचना तो मानते ही हैं। प्रस्तुत इकाई में आप पुराणों में प्राप्त सभ्यता और संस्कृति के वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे।

21.2 पुराणों का परिचय

पुराणों की रचना वेदोत्तर काल में सतत होती रही। यह नहीं कहा जा सकता कि पुराण केवल एक कालखण्ड में लिखे गये। **"इतिहास-पुराणाभ्यां वेदार्थम् उपबृंहयेत्"**, इतिहास और पुराणों से वेदों के अर्थ का समुपबृंहण करना चाहिये, इस उक्ति से यह सिद्ध होता है कि पुराणों में वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि के आख्यानों का पल्लवन किया गया है। वैदिक साहित्य में सूत्र रूप में कहे गये आख्यानों को पुराणों ने विस्तार प्रदान किया है। पुराण शब्द का अर्थ ही है–**पुराणम् आख्यानम्,** प्राचीन कथा या आख्यान ही पुराण हैं। पुराणों की संख्या कितनी है यह भी निश्चित रूप से कह पाना सम्भव नहीं है तथापि महापुराणों की संख्या अठारह निर्धारित की गयी है। इनमें छः शैव पुराण, छः वैष्णव पुराण तथा छः ब्राह्मपुराण हैं। शिव पुराण, लिङ्ग पुराण, स्कन्द पुराण, अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण और कूर्म पुराण शैव पुराण हैं। विष्णु पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, गरुड पुराण, पद्म पुराण तथा वराह पुराण वैष्णव पुराण हैं। ब्रह्म पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण, भविष्य पुराण और वामन पुराण ब्राह्म पुराण माने जाते हैं। पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति, सृष्टि का विस्तार, प्रलय, पुनः सृष्टि, विभिन्न राजवंशों तथा ऋषिवंशों का वर्णन, संसार का काल विभाग तथा प्रत्येक काल की घटनाओं का वर्णन तथा अनेक प्रतापी राजाओं के द्वारा किये गये महनीय कार्यों का वर्णन है। इसी आधार पर पुराणों का लक्षण किया गया है –

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।

पुराणों का जितना साँस्कृतिक महत्त्व है उतना ही ऐतिहासिक महत्त्व भी है। वेदोत्तरकालीन प्राचीन भारतीय संस्कृति को जानने का प्रमुख स्रोत पुराण ही है। आज के समाज में चल रही धार्मिक गतिविधियाँ पुराणों से ही प्रभावित हैं, अतः इनके अध्ययन से भारत की साँस्कृतिक और सभ्यतागत विरासत को जान सकेंगे।

21.3 संस्कृति और सभ्यता

संस्कृति शब्द सम् उपसर्गपूर्वक "कृ" धातु से "क्तिन्" प्रत्यय होकर होती है जिसका अर्थ है वह कार्य जो विधिवत् सम्पादित किया गया हो, जो अलंकृत हो, विभूषित हो तथा किसी को भी आकृष्ट करने में सक्षम हो। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि

संस्कृति शब्द किसी भी वस्तु, देश या मानव के परिष्कृत स्वरूप को द्योतित करता है। मानव सभ्यता के बौद्धिक उत्कर्ष को ही प्रस्तुत प्रसंग में संस्कृति शब्द से अभिहित किया जाता है। यह उत्कर्ष साहित्य, कला, दर्शन, विज्ञान, अध्यात्म आदि के माध्यम से जाना जाता है। मानव ने जो कुछ सोचा है, जो कुछ उसके द्वारा कार्य रूप में परिणत किया गया है, जो कुछ उसका भौतिक उत्कर्ष है, वह सब सभ्यता की परिधि में आता है। सामान्यतः सभ्यता सभ्य होने का भाव है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य की भौतिक उन्नति परिगणित की जाती है, मनुष्य की भौतिक क्षेत्र की प्रगति सूचित की जाती है। संस्कृति से मनुष्य के मानसिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष का परिज्ञान होता है। सभ्यता और संस्कृति के मध्य बहुत सूक्ष्म अन्तर है। यदि हम पुष्प को सभ्यता कहें तो उसकी सुगन्ध संस्कृति कहलायेगी। संस्कृति मानव का विस्तार है तो सभ्यता उसकी स्थिरता। किसी भी समाज कि संस्कृति बताती है कि "यह क्या है" जबकि सभ्यता यह बताती है कि "इस समाज के पास क्या है? इन दोनों शब्दों द्वारा मनुष्य की व्यापक विस्तार यात्रा का कथन किया जाता है। संस्कृति आत्मा है और सभ्यता शरीर। प्रस्तुत इकाई में हम इन्हीं तत्त्वों के आलोक में पुराणों मे प्राप्त संस्कृति और सभ्यता के बारे में संक्षेप में जानेंगे।

21.4 पुराणों में धर्म की अवधारणा

पुराणों के अनुसार धर्म ही सभी पुरुषार्थों में श्रेष्ठ है। धर्म के माध्यम से अन्य पुरुषार्थ स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। अपने धर्म का पालन करना ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। वही मुक्तिप्रद है–

तस्माद् धर्मः सेवितव्यः सदा मुक्तिफलप्रदः।
धर्मादर्थस्ततः कामो मोक्षश्च परिकीर्त्यते।।

मनुष्य को सदैव अपने धर्म का सेवन करना चाहिये। धर्म ही मुक्तिफल प्रदान करता है। धर्म से अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य वर्णाश्रम के विरुद्ध कर्म करते हैं, वे नरकगामी होते हैं मनुष्य जन्म का फल त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) है जो धर्म से हीन होता है उसके अर्थ और काम वन्ध्यासुत के समान होते हैं।

धर्म को परिभाषित करते हुये पुराणों में कहा गया है कि जो धारण करता है, जीवन की रक्षा करता है, अधोगति से बचाता है, वह धर्म है तथा अधोगति करने वाला अधर्म कहलाता है–

धारणाद् धृतिरित्यर्थाद्धातोः धर्मशब्दः प्रकीर्तितः।
अधारणेऽमहत्त्वे च अधर्म इति चोच्यते।।वायु. पु. प्रक्रिया. 59/28

ब्रह्माण्ड पुराण में भी इसी तथ्य को दुहराया गया है। भविष्य पुराण के अनुसार समग्र संसार में स्थावर, जंगम जो कुछ भी है, उसे धारण करने वाला एकमात्र धर्म है। यह धर्म आदि और अन्त रहित शक्ति है–

धर्मेण धार्यते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
अनादिनिधना शक्तिर्नैषा ब्राह्मी द्विजोत्तम।।

इस प्रकार शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित आचार का प्रतिपादन करना ही धर्म है। उसके विरुद्ध आचरण अधर्म की कोटि में आता है। मनुष्य द्वारा रक्षित धर्म मनुष्य की रक्षा करता है, उसे उत्कर्ष प्रदान करता है – **धर्मो रक्षति रक्षितः।**

पुराण वेद को धर्म का मूल मानते हैं–**वेदो मूलं तु धर्माणाम्** (पद्म पुराण)। ब्रह्म वैवर्त पुराण, वामन पुराण आदि भी श्रुति को ही धर्म का मूल और प्राण मानते हैं। पुराण धर्म प्रधान ग्रन्थ हैं उनमें भक्ति, दर्शन, मूर्तिपूजा, नामसंकीर्तन तथा तीर्थों का महत्त्व आदि वर्णित है। भगवान् के विभिन्न अवतारों में पुराणों की महान् आस्था है। इन अवतारों का प्रयोजन, स्वरूप, उपासना की पद्धति आदि पुराणों मे प्रतिपादित है।

21.4.1 भक्ति

वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस युग में कर्मकाण्ड को अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता था। यज्ञों को सर्वप्रधान धर्म माना जाता था। बाद में ज्ञान के विकास के अनन्तर निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया जाने लगा। उपनिषदों में इसी निराकार ब्रह्म की उपासना पर अधिक जोर दिया गया है। वस्तुतः यह निराकार उपासना का मार्ग ज्ञानियों के लिये ही श्रेयस्कर था। सामान्य जनता इसके रहस्यों तथा गूढता और जटिलता को आत्मसात् करने में समर्थ नहीं थी। उसके लिये यह नीरस और शुष्क था। परिणामतः भक्ति का विकास हुआ, जिसमें सबको समान रूप से अपने आराध्य की आराधना का अधिकार प्राप्त था। भक्ति का लक्षण करते हुये गीता में भक्ति और भक्त के स्वरूप पर प्रकाश डाला है–

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनो बुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।

भगवान् के चरणों में अपने को पूर्णतः समर्पित कर देना ही भक्ति है। भक्त को चाहिये कि वह किसी से द्वेष न करे स्वार्थरहित होकर सबको प्रेम करे, सब में दयाभाव रखे, मन और इन्द्रियों को वश में रखे तथा सर्वथा संतुष्ट रहे। भक्ति के नौ भेदों का कथन किया गया है –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

अपने आराध्य का नामश्रवण, गुणकीर्तन, नामस्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन यह नौ प्रकार की भक्ति है। भक्ति से प्रसन्न भगवान् वैकुण्ठ छोड़कर वहीं चले आते हैं जहाँ उनके भक्त गुणगान करते हैं –

नाऽहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

कलियुग में भक्ति को ही भवसागर पार करने का प्रबल मार्ग माना गया। पुराणों में प्रह्लाद आदि भक्तों का उदाहरण देकर भक्ति का प्रबल प्रतिपादन किया गया। भक्त विष्णु, शिव, ब्रह्मा आदि का भजन और पूजन तो करते ही रहे किन्तु इसमें ज्ञान और कर्मकाण्ड का सर्वथा परित्याग नहीं किया गया।

21.4.2 मूर्तिपूजा

वेदों में निर्गुण निराकार की उपासना पर बल दिया गया था। निराकार ब्रह्म की वैदिक अवधारणा में पुराणों ने साकार ब्रह्मा की सगुण उपासना को जोड़ा। इस साकार पूजा परम्परा के कारण ही मूर्तिपूजा का प्रचार-प्रसार हुआ, मूर्तियों का निर्माण हुआ। भक्तों

ने अपने आराध्य के पौराणिक स्वरूप के आधार पर उनकी मनोहर छवि को निहारने के लिये मूर्तियों का निर्माण कराया, उनमें प्राणप्रतिष्ठा करके अपने आराध्य का साक्षात्कार किया। मन्दिरों का निर्माण करके उनमें भगवान् की मूर्ति स्थापित की गयी तथा भक्तों ने भक्ति से ओत-प्रोत होकर उन मूर्तियों के सम्मुख आत्मसमर्पण किया। उन मूर्तियों के शृङ्गार और वेश-भूषा आदि की संकल्पना की गयी। मूर्तियों को साक्षात् ईश्वर माना गया। इतिहासकार मौर्य और सातवाहन युग में मूर्तियों तथा मन्दिरों के निर्माण का प्रारम्भ मानते हैं। पुराणों में विष्णु आदि देवताओं का स्वरूप स्पष्ट रूप से अंकित है –

विष्णोस्तावत् प्रवक्ष्यामि यादृग् रूपं प्रशस्यते।
शङ्खचक्रधरं शान्तं पद्महस्तं गदाधरम्।।
छत्राकारं शिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम्।
तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरुभुजक्रमम्।।
क्वचिदष्टभुजं विद्याच्चतुर्भुजमथापि वा।
द्विभुजं वापि कर्तव्यं भवने तु पुरोधसा।।

विष्णु का स्वरूप इस प्रकार का होना चाहिये– शंख तथा चक्र को धारण किये हों, हाथ में पद्म और गदा हो, स्वरूप शान्त हो, ग्रीवा शंख के समान हो, दृष्टि सुन्दर हो, आठ, चार या दो भुजायें हों। पुराणों में प्राप्त वर्णनों के आधार पर मूर्तियों का निर्माण कर मंदिरों में उनकी प्राणप्रतिष्ठा की गयी तथा उनकी अर्चना आदि से भक्तों ने उनका साक्षात्कार किया। अचिन्त्य, अप्रमेय, निर्गुण, अशरीरी ब्रह्म की यह रूप कल्पना उपासकों की सिद्धि के लिये की गयी है–

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्याशरीरिणः।
उपासकानां सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना।।

भारत के प्रमुख मन्दिरों में सोमनाथ मन्दिर, रामेश्वर मन्दिर, जगन्नाथ मन्दिर आदि की गणना की जाती है। सनातन धर्म को मानने वाल प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कम से कम एक बार इन मन्दिरों के दर्शन की अभिलाषा रखता है। मूर्तिपूजा की इस अवधारणा के विकास में पुराणों का महनीय योगदान है।

21.4.3 अवतारों की संकल्पना

पुराणों ने ईश्वर के सगुण स्वरूप को स्थापित करते हुये उनके अवतारों की चर्चा की है। जब-जब पृथ्वी पर अधर्म का आधिक्य होता है तथा आसुरी प्रवृत्ति बढ जाती है, धार्मिक कर्म बाधित होने लगते हैं, धर्म का पालन करने वाले पीडित होने लगते हैं, तब परमेश्वर अवतार लेकर आसुरी प्रवृत्तियों को नष्ट करके पृथ्वी पर पुनः धर्म की स्थापना करते हैं। गीता में अपने अवतार का प्रयोजन बताते हुये श्रीकृष्ण ने कहा है –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

पुराणों के अनुसार पृथ्वी पर अब तक ईश्वर के 24 अवतार हो चुके हैं। कल्कि के रूप में उनका 24वाँ अवतार होना निश्चित है। इन अवतारों में दस अवतार प्रमुख माने जाते हैं –

मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। पुराणों में इन अवतारों का विशद वर्णन हुआ है। मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अवतारों पर स्वतन्त्र पुराण लिखे गये हैं। उनमें उन अवतारों के वैशिष्ट्य का वर्णन हुआ है। पुराणों ने इन अवतारों के माध्यम से समाज में नयी व्यवस्था भी स्थापित की। भक्ति के आलोक में सम्पूर्ण समाज को पुराणों ने एकसूत्र में बाँधा। श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन श्रीमद्भागवत में विशेष रूप से हुआ है। रामकथा का सूत्रपात करने वाला ग्रन्थ रामायण है। परवर्ती काल में राम का भक्तिनिष्ठ वर्णन हुआ। वराह अवतार आदि का सप्रयोजन वर्णन पुराणों में प्राप्त होता है।

21.4.4 तीर्थ माहात्म्य वर्णन

पुराणों में अनेक तीर्थों का वर्णन प्राप्त होता है। तीर्थ शब्द का अर्थ है–**तरति पापादिकं यस्मात्।** जहाँ की यात्रा करने या जिनका दर्शन करने से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है, उन्हें तीर्थ कहते हैं। तीर्थों के जल में स्नान से, उनका दर्शन करने से तथा वहाँ तप आदि करने से मनुष्य के पाप दूर होते हैं। भारत में अनेक तीर्थ हैं। जिनमें सप्तपुरियाँ प्रमुख हैं– काशी, अयोध्या, काञ्ची, पुरी, मथुरा, अवन्तिका (उज्जैन), मायापुरी (हरिद्वार) –

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।।

पुराणों के अनुसार तीर्थ यात्रा करने से मनुष्य के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं तथा वह मोक्ष प्राप्त करता है। पुराणों में तीर्थ यात्रा में करणीय अनेक कर्मों का विधान कहा गया है–

तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा।
शिरोगतानि पापानि यान्ति मुण्डनतो यथा।।

तीर्थयात्रा के व्याज से लोग अनेक प्रदेशों की संस्कृतियों तथा वहाँ के परिवेश से परिचित होते थे। प्रत्येक तीर्थ की अपनी विशेषता तो है ही, उनका अपना अपना महत्त्व भी है । तीर्थों में चार धाम प्रसिद्ध हैं– उत्तर में बदरिकाश्रम, पूर्व में पुरी, पश्चिम में सोमनाथ तथा दक्षिण में रामेश्वरम्। राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से भी इन तीर्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

21.4.5 नामसंकीर्तन

पुराणों मे नवधा भक्ति का उल्लेख तो हुआ ही है, उसमें नामसंकीर्तन का अत्यधिक महत्त्व है। भगवान् के नाम का स्मरण, उसका गायन आदि इस कोटि में आता है। भगवन्नाम संकीर्तन से भक्त समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

21.5 पुराणों में अर्थ का स्वरूप

पुराणों में अर्थ का प्रतिपादन भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति में यह द्वितीय पुरुषार्थ माना गया है। पुराण भी इसे उसी रूप में प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं। अर्थ शब्द "अर्थ्" धातु से "घञ्" प्रत्यय करके निष्पन्न होता है। प्राचीन काल से लेकर अब तक अर्थ की अवधारणा का विकास होता ही रहा है। अर्थ का सम्बन्ध उन समस्त वस्तुओं से है, जो मानव जीवन के निर्वाह के महत्त्वपूर्ण कारक हैं। कृषि, गोपालन आदि जो

भी अर्थोपार्जन में सहायक होते हैं, उन सबको अर्थ के अन्तर्गत परिगणित किया गया है। अर्थ से धर्म और काम स्वयं सिद्ध हो जाते हैं। समस्त लोग अर्थ के लिये ही प्रवृत्त रहते हैं। पद्मपुराण में कहा गया है कि जिस व्यक्ति के पास अर्थ है उसी के पास मित्र, बन्धु, कुल, शील, पाण्डित्य आदि सब होता है। अर्थहीन व्यक्ति की समाज में कोई गति नहीं होती–

यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बान्धवाः।
कुलशीलं च पाण्डित्यं रूपभोग्यं यशः सुखम्।।
धनेन तु विहीनस्य पुत्रदारोज्झितस्य च।
कथं मित्रं कथं धर्मो दीनानां जन्मनः कथम्।।

पुराण अर्थोपार्जन में शुद्धता के पक्षधर हैं। जिस अर्थ का उपार्जन धर्म के द्वारा कहे गये मार्ग से किया जाता है, पुराण उसी को शुद्ध अर्थ मानते हैं किन्तु अधर्म से अर्जित धन को अशुद्ध माना गया है। स्कन्दपुराण में दो प्रकार का धन माना गया है–

द्विविधं धनमित्याहुः पण्डिताः पारदर्शिनः।
एकं बन्धाय पापानामपरं मोक्षसाधनम्।।

अधर्म से उपार्जित धन पाप का कारण बनता है किन्तु धर्म से उपार्जित धन मोक्ष का साधन होता है। पुराण अधर्म से अर्जित अर्थ और काम को महत्त्व नहीं देते तथा उनके परित्याग की बात करते हैं। अर्थ का संचय भी धर्म के लिये ही करना चाहिये। धर्म से अर्जित धन कभी समाप्त नहीं होता जबकि अधर्म से अर्जित धन स्वयं नष्ट हो जाता है।

21.6 पुराणों में काम का स्वरूप

काम मानव जीवन का तीसरा पुरुषार्थ है। पुराणों में काम पुरुषार्थ को लेकर पर्याप्त विचार हुआ है। महाभारत में कहा गया है कि काम कभी उपभोग से शान्त नहीं होता। वह उपभोग से उसी तरह बढता है, जैसे घी डालने से अग्नि प्रज्ज्वलित होती है –

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।

"काम्यते इति कामः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार यह शब्द विषय और इन्द्रियों के संयोग से प्राप्त होने वाले मानसिक आनन्द का वाचक है। इन्द्रियों द्वारा अपने-अपने विषय के आस्वाद से जो सुख प्राप्त होता है, वही काम है। इस शब्द से कामना अभिलाषा तथा स्त्री-पुरुष का संयोगादि अभिहित होता है। कामसूत्रकार वात्स्यायन ने काम को परिभाषित करते हुये कहा है –**आभिमानिकरसानुविद्धा यतः सर्वेन्द्रियप्रीतिः स कामः।** मन सहित इन्द्रियों का अपने अपने विषय में अनुकूल प्रवृत्ति ही काम है। इस प्रकार चक्षु, श्रोत्र, नासिका, रसना, त्वक् आदि इन्द्रियों के रूप, रस आदि अपने विषयों संयोग से मिलने वाला आनन्द ही काम है।

शास्त्रकारों ने काम को पुरुषार्थ के अन्तर्गत परिगणित करते हुये उसे स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की। धर्मसमर्थित काम-आचरण ही आचार्यों द्वारा समर्थित है। धर्म से विपरीत काम मनुष्य के विनाश का कारण बनता है। मनु धर्मरहित अर्थ और काम के परित्याग की मन्त्रणा देते हैं–

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।

काम को परिभाषित करते हुये कहा गया है कि काम वह सुख है जो इन्द्रियों का विषयों के साथ संसर्ग होने पर प्राप्त होता है–

इन्द्रियाणां च पञ्चानां मनसो हृदयस्य च।
विषये वर्तमानानां या प्रीतिरुपजायते।।
स काम इति मे बुद्धिः कर्मणां फलमुत्तमम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि काम की तृप्ति प्राप्त न होने पर क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से मोह उत्पन्न होता है, मोह से स्मृति में भ्रम उत्पन्न होता है, स्मृतिभ्रम से बुद्धि का नाश होता है, बुद्धि का नाश होने से वह मनुष्य नष्ट हो जाता है–

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

काम का महत्त्व इससे और बढ जाता है कि गीता में श्रीकृष्ण अपने को धर्माविरुद्ध काम कहते हैं–**धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ।** मत्स्यपुराण कहता है कि धर्मविहीन काम वन्ध्यापुत्र के समान है– **धर्महीनस्य कर्मार्थौ वन्ध्यासुतसमौ स्मृतौ।** महाभारत कहता है कि धर्मरहित काम का आचरण करने वाला व्यक्ति आपत्ति में गिर जाता है तथा शत्रु उसका उपहास करते हैं–

धर्मार्थावभिसन्त्यज्य संरम्भं योऽनुमन्यते।
हसन्ति व्यसने तस्य दुर्हृदो न चिरादिव।।

आचार्यों ने काम के विषय में विशद विचार किया है। इसे चित्त के संकल्प के रूप में मान्यता दी गयी है। इन्द्रियों द्वारा अन्तःकरण में प्राप्त होने वाले विषय सुख भोग के आनन्द को ही आचार्य काम शब्द से अभिहित करते हैं। यह काम मन के संकल्प और विकल्प से उत्पन्न होता है। काम का अर्थ है इच्छा, तृष्णा, वासना आदि। वासनारूप काम से ही संसार की सृष्टि होती है। ऋग्वेद काम को **"मनसो रेतः"** कहता है।

वासनामय काम की उत्पत्ति उन्माद से होती है। उन्माद ही सुख और आनन्द का मूल है तथा प्राणिमात्र के जीवन का लक्ष्य सुख प्राप्ति ही है, इसलिये सुख की प्राप्ति के लिये काम अत्यन्त आवश्यक है। काम से इन्द्रियाँ तृप्ति प्राप्त करती हैं तथा इन्द्रियों की तृप्ति से सुख की अनुभूति होती है–**इन्द्रियप्रसादनफला हि विभूतयः।** यह काम सृष्टिमूलक है, जीवन में आवश्यक होने के कारण ही इसे पुरुषार्थों में परिगणित किया गया है। इसको पवित्र तथा उपयोगी बनाये रखने के लिये आचार्यों ने इसे धर्म से समन्वित किया है। चाणक्य ने कहा है कि जो धर्म और अर्थ को हानि नहीं पहुँचाता वही काम है–**यो धर्मार्थौ न विवर्धयति स कामः।** धर्म, अर्थ और काम जीवन के मूल हैं इनके समन्वय से ही जीवन को पूर्णता प्राप्त होती है।

काम पर विजय पाना अतिदुष्कर कार्य है। जो व्यक्ति काम को जीत लेता है, उसका जीवन सफल हो जाता है। देवता, असुर, राक्षस, पशु, पक्षी, मनुष्य कोई भी इसे जीतने में समर्थ नहीं है। पद्मपुराण में काम की दुर्जेयता का उल्लेख किया गया है–

देवासुर-मनुष्येषु रक्षसां मृगपक्षिणाम्।

कीटादीनां च सर्वेषां काम एव सुदुर्जयः।।

इस प्रकार काम का महत्त्व होते हुये भी उसे सदा धर्म के अनुसार ही मान्यता दी गयी है। काम को धर्म से अनुबद्ध करने का तात्पर्य यही है कि मानव मन में उसके प्रति उन्माद का प्रादुर्भाव न हो। चाणक्य के अनुसार कामासक्त व्यक्ति किसी भी कार्य का सम्यक् अनुष्ठान नहीं कर सकता–**न कामासक्तस्य कार्यानुष्ठानम्।** कौटिल्य यह मन्त्रणा देते हैं कि धर्म और अर्थ के अविरोध से ही काम का सेवन करना चाहिये– **धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत, न निःसुखं स्यादिति।** आचार्यों ने काम के उपभोग के विषय में भी विचार किया है। अल्पकामोपभोग से कामना का पुनः उत्पन्न होना इस बात का द्योतक है कि चित्त में कामतत्त्व वासना के रूप में अवस्थित रहते हैं। काम का उपभोग सम्यक् प्रकार से करना चाहिये–

कामं कामयमानस्य यदि कामः स सिद्ध्यति।
तथैवापरः कामो भूयो विद्ध्यति बाणवत्।।

पुराणों ने काम के विषय में जो भी विचार किया है उसका निष्कर्ष यही है कि काम को सदैव धर्म से नियन्त्रित होना चाहिये। मनुष्य को उसके उपभोग में संयमित होना चाहिये। काम का अभिप्राय उन सभी सांसारिक सुख भोगों से है, जिन्हें मनुष्य भोगना चाहता है। समस्त पुरुषार्थों की प्राप्ति में शरीर की परम उपयोगिता है– **धर्मार्थकाममोक्षाणां देहः परं साधनम्।** धर्म से अर्थ और काम दोनों ही नियन्त्रित होते हैं– **धर्माच्च जायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽपि जायते।** मनुस्मृति में यह प्रतिपादित किया गया है कि भोगों की शान्ति भोगों से कभी नहीं होती।

भगवान् की आराधना से जीव धर्म, अर्थ और काम का उपभोग करता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है। भक्ति देव दुर्लभ कामनाओं को पूर्ण करती है। शास्त्रों में काम के स्वरूप तथा उसके उपभोग को लेकर जो भी चर्चा प्राप्त होती है उसका निष्कर्ष यही है कि काम को सदा धर्मपूर्वक ही होना चाहिये। धर्मपूर्वक काम मानव जीवन को पूर्णता प्रदान करता है, उसे आनन्द प्रदान करता है तथा उसके जीवन को गति प्रदान करता है किन्तु धर्महीन काम मानव के पतन का कारण बनता है। धर्महीन काम से मनुष्य समाज में उपेक्षा और अपमान प्राप्त करता है इसलिये धर्मपूर्वक काम का ही सेवन करना चाहिये।

21.7 पुराणों में मोक्ष का स्वरूप

मोक्ष मानव जीवन का चरम पुरुषार्थ है। प्रत्येक मानव को इसकी प्राप्ति का उपक्रम करना चाहिये। सभी भारतीय दर्शन मोक्ष को स्वीकार करते हैं एकमात्र चार्वाक ही ऐसा दर्शन है, जो मोक्ष को मान्यता नहीं देता। आवागमन अथवा पुनर्जन्म से मुक्त होकर आत्मा का परमात्मा में विलीन हो जाना ही मोक्ष है। कतिपय दर्शनों में इसे भगवत्सन्निधि आदि के रूप में भी मान्यता मिली है। आत्मा नित्य तत्त्व है। वह अजर और अमर है तथा परमात्मा का अंश है। शरीर ही उसके बन्धन का कारण है।

पुराणों में मोक्ष को कैवल्य, अपवर्ग, मुक्ति, निर्वाण, निःश्रेयस् आदि शब्दों से अभिहित किया गया है। अग्निपुराण में कहा गया है–

कैवल्यं चैव निर्वाणं निःश्रेयसमनूपमम्।
अमृतं चाक्षरं ब्रह्म ह्यपुनर्भवमद्भुतम्।।

वर्ण तथा आश्रमों के लिये जो धर्म प्रतिपादित किया गया है, उसके पालन से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। धर्म के अनुसार ही अर्थ और काम की प्राप्ति होती है इसीलिये धर्म को ही अपवर्ग कह दिया गया है–

धर्म एव अपवर्गाय तस्माद् धर्मं समाचर। आश्रम व्यवस्था में प्रत्येक आश्रम के कर्तव्यों का निर्धारण शास्त्रों में किया गया है। ये कर्तव्य ही उन आश्रमों के धर्म हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने आश्रम में रहता हुआ तथा शास्त्र द्वारा प्रतिपादित अपने-अपने धर्म का पालन करता हुआ मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। उसे अतिरिक्त कर्म करने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय में स्कन्द पुराण का स्पष्ट अभिमत है कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और सन्न्यासी सभी यदि अपने-अपने आश्रम के अनुकूल कर्म करते हुये अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं तो मोक्ष अवश्य ही प्राप्त होता है–

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः।
यदि स्यात् संयतात्मा स नूनं मुक्तिमवाप्नुयात्।।

भागवत महापुराण में कहा गया है कि जो पुरुष किसी प्रकार की कामना न करता हुआ अपने वर्णाश्रम धर्मों द्वारा सदैव श्रद्धापूर्वक परमेश्वर का स्मरण करता है तथा उसकी आराधना करता है, क्रमशः उसका चित्त शुद्ध हो जाता है। इस चित्त-शुद्धि से उसका विषयों से सम्बन्ध टूट जाता है और उसे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो जाती है–

यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयान्वितः।
भजते शनकैस्तस्य मनो राजन् प्रसीदति।।
परित्यक्ते गुणः सम्यग् दर्शनो विशदाशयः।
शान्तिं मे समवस्थानं ब्रह्म कैवल्यमश्नुते।।

जो पुरुष सब छोड़कर केवल विष्णु का स्मरण करते हैं, उन्हें भी स्वर्ग प्राप्त होता है–

सर्वान् क्लेशान् परित्यज्य विष्णुमेव स्तुवन्ति ये।
स्वधर्म-निरता धीरास्ते नराः स्वर्ग-गामिनः।।

इस प्रकार पुराणों में मोक्ष की विशद व्याख्या की गयी है तथा उसकी प्राप्ति का उपाय भी बताया गया है।

पुराण वैदिक धर्म की ही पुनर्व्याख्या करते हैं, वैदिक धर्म को ही अपने युग के अनुरूप प्रस्तुत करते है।

21.8 पुराणकालीन समाज

पुराण काल में समाज का मूल आधार वर्णाश्रम व्यवस्था थी। स्त्रियों की दशा शोचनीय नहीं थी। पतिव्रत धर्म आदि इस समय महत्त्व को प्राप्त थे। पुनर्विवाह वर्जित था किन्तु स्त्री को समाज में सम्मान प्राप्त था। पुराणों ने सामाजिक संकीर्णता को दूर करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया। भक्ति के माध्यम से पुराणों ने सामाजिक समरसता उत्पन्न की तथा सबको समान अधिकार दिलाया। पुराणों के विशेष महत्त्व इसी में है कि उनकी रचना जनसामान्य के लिये हुयी। वेदों में प्रतिपादित गम्भीर तथ्यों को, ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित यज्ञ-यागादि विधियों को पुराणों ने सरलतम रीति से आख्यानों और उपाख्यानों के माध्यम से प्रस्तुत किया जिससे वह सब जनसामान्य को भी उपलब्ध हो सका। उपनिषदों का तत्त्व चिन्तन, जो केवल विद्वानों या तत्त्व वेत्ताओं के समझ की वस्तु थी,

पुराणों ने उसे सरल, सुगम और सुबोध बनाया जिससे वह सामान्य से सामान्य व्यक्ति के बुद्धि का विषय बन सका और जनसामान्य उसकी ओर प्रभावित हो सका।

पुराणों ने अपने युग धर्म के अनुसार वृहद् भारतीय समाज के अन्तर्गत विभिन्न जातियों के आचारों और संस्कारों पर भी विचार किया तथा उन्हें आत्मसात् करके उनकी पुनः स्थापना किया जिससे वर्ण संकीर्णता आदि के जो भेदभाव समाज में थे, वह सब दूर हुये। इससे समाज में नयी व्यवस्था का सूत्रपात हुआ। धर्मसूत्रों तथा स्मृतियों में प्रतिपादित अनेक धर्मों या सामाजिक नियमों का पुराणों ने संशोधन किया तथा मानवमात्र के लिये समानता स्थापित करने का उपक्रम किया।

21.9 राजनीतिक स्थिति

पुराणों के समय राजतन्त्र को महत्त्व प्राप्त था। उस समय राज्य की समस्त शक्तियों का स्वामित्व राजा को ही प्राप्त था। राजा साक्षात् ईश्वर का स्वरूप माना जाता था, इसलिये उसके निर्णय के विरुद्ध किसी को कुछ कहने का अधिकार नहीं था। पुराणों के समय अनेक चरित्रवान् राजा हुये जिन्होंने प्रजा को अपने सन्तान के समान पाला। उनकी सत्यवादिता, प्रजाप्रियता आदि आज भी प्रसिद्ध हैं। राजा केवल मनुष्य का संरक्षण नहीं करता था अपितु वह प्राणिमात्र पर दया रखता था। राजा शिबि ने एक कबूतर की रक्षा के लिये अपने शरीर का माँस काटकर दे दिया था। महाराज दिलीप ने वशिष्ठ की नन्दिनी गौ की रक्षा के लिये सिंह के सम्मुख अपना शरीर समर्पित कर दिया था। पुराणों में हरिश्चन्द्र जैसे अनेक यशस्वी राजाओं का वर्णन है, जिन्होंने सत्य और धर्म के पालन में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया।

पुराणों में अनेक राजवंशों का वर्णन है। आख्यानों और उपाख्यानों के माध्यम से पुराणकारों ने तत्कालीन राजाओं तथा उनकी राजनीतिक स्थितियों का वर्णन किया है। आख्यान के रूप में उन्हीं तथ्यों का प्रतिपादन किया जाता था जो उनके द्वारा स्वयं देखे जाते थे। श्रुत का वर्णन उपाख्यान कहलाता है। पितर, पृथ्वी आदि के प्रशंसात्मक गीतों को गाथा कहा जाता है –

स्वयं दृष्टार्थ-कथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः।
श्रुतस्यार्थस्य कथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः।।
गाथास्तु पितृ-पृथ्वी-प्रभृति गीतयः।
कल्पशुद्धिः श्राद्ध-कल्पादि-निर्णयः।।

अतः पुराणों में प्राप्त राजनीतिक वर्णन उनका स्वयं का अनुभूत सत्य है, जो प्रामाणिक है। पुराणों मे प्राप्त राजनीतिक विचारों पर अनेक विद्वानों ने गहन अनुसंधान करके उनकी प्रामाणिकता सिद्ध की है। पुराणकालीन समाज राजनीतिक दृष्टि से सुदृढ था।

21.10 आर्थिक स्थिति

पुराण काल का भारत आर्थिकरूप से सम्पन्न था। भारतवर्ष का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत था, अतः दूर-दूर तक व्यापार होता था। धन सम्पन्न होने के कारण लोगों की दान, तीर्थयात्रा, व्रत, पूजा-पाठ, धर्म-कर्म में अभिरुचि थी। पुराणकालीन आर्थिक स्थिति भी पूर्णतः कृषि, पशुपालन आदि पर ही निर्भर थी। यहाँ धातुकारों, लौहकारों आदि का भी उल्लेख मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि कुछ लोग समाज में इस प्रकार के अनेक कार्यों को सम्पन्न करके आजीविका अर्जित करते थे।

21.11 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि पुराणों की रचना वेदोत्तर काल में सतत होती रही। यह नहीं कहा जा सकता कि पुराण केवल एक काल खण्ड में लिखे गये। **"इतिहास-पुराणाभ्यां वेदार्थम् उपबृंहयेत्"**, इतिहास और पुराणों से वेदों के अर्थ का समुपबृंहण करना चाहिये, इस उक्ति से यह सिद्ध होता है कि पुराणों में वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि के आख्यानों का पल्लवन किया गया है। वैदिक साहित्य में सूत्र रूप में कहे गये आख्यानों को पुराणों ने विस्तार प्रदान किया है। पुराण शब्द का अर्थ ही है–**पुराणम् आख्यानम्**, प्राचीन कथा या आख्यान ही पुराण हैं। पुराणों की संख्या कितनी है यह भी निश्चित रूप से कह पाना सम्भव नहीं है तथापि महापुराणों की संख्या अठारह निर्धारित की गयी है। इनमें छः शैव पुराण, छः वैष्णव पुराण तथा छः ब्राह्म पुराण हैं। शिव पुराण लिङ्ग पुराण, स्कन्द पुराण, अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण और कूर्म पुराण शैव पुराण हैं। विष्णु पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, गरुड पुराण, पद्म पुराण तथा वराह पुराण वैष्णव पुराण हैं। ब्रह्म पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण, भविष्य पुराण और वामन पुराण ब्राह्म पुराण माने जाते हैं। पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति, सृष्टि का विस्तार, प्रलय, पुनः सृष्टि, विभिन्न राजवंशों तथा ऋषिवंशों का वर्णन, संसार का काल विभाग तथा प्रत्येक काल की घटनाओं का वर्णन तथा अनेक प्रतापी राजाओं के द्वारा किये गये महनीय कार्यों का वर्णन है। पुराणों का जितना साँस्कृतिक महत्त्व है उतना ही ऐतिहासिक महत्त्व भी है। वेदोत्तरकालीन प्राचीन भारतीय संस्कृति को जानने का प्रमुख स्रोत पुराण ही हैं।

इस इकाई में आपने संस्कृति और सभ्यता के स्वरूप को भी जाना और समझा। आप जानते हैं कि संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक "कृ" धातु से "क्तिन्" प्रत्यय होकर होती है जिसका अर्थ है वह कार्य जो विधिवत् सम्पादित किया गया हो, जो अलंकृत हो, विभूषित हो तथा किसी को भी आकृष्ट करने में सक्षम हो। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि संस्कृति शब्द किसी भी वस्तु, देश या मानव के परिष्कृत स्वरूप को द्योतित करता है। मानव सभ्यता के बौद्धिक उत्कर्ष को ही प्रस्तुत प्रसंग में संस्कृति शब्द से अभिहित किया जाता है। यह उत्कर्ष साहित्य, कला, दर्शन, विज्ञान, अध्यात्म आदि के माध्यम से जाना जाता है। मानव ने जो कुछ सोचा है, जो कुछ उसके द्वारा कार्य रूप में परिणत किया गया है, जो कुछ उसका भौतिक उत्कर्ष है, वह सब सभ्यता की परिधि में आता है। सामान्यतः सभ्यता सभ्य होने का भाव है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य की भौतिक उन्नति परिगणित की जाती है, मनुष्य की भौतिक क्षेत्र प्रगति सूचित की जाती है। संस्कृति से मनुष्य के मानसिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष का परिज्ञान होता है। सभ्यता और संस्कृति के मध्य बहुत सूक्ष्म अन्तर है। यदि हम पुष्प को सभ्यता कहें तो उसकी सुगन्ध संस्कृति कहलायेगी। संस्कृति मानव का विस्तार है तो सभ्यता उसकी स्थिरता। किसी भी समाज कि संस्कृति बताती है कि "यह क्या है?" जबकि सभ्यता यह बताती है कि "इस समाज के पास क्या है?"

आपने यह जाना कि पुराणों के अनुसार धर्म ही सभी पुरुषार्थों में श्रेष्ठ है। धर्म के माध्यम से अन्य पुरुषार्थ स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। अपने धर्म का पालन करना ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

मनुष्य को सदैव अपने धर्म का सेवन करना चाहिये। धर्म ही मुक्तिफल प्रदान करता है। धर्म से अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य वर्णाश्रम के विरुद्ध कर्म

करते हैं, वे नरकगामी होते हैं मनुष्य जन्म का फल त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) है जो धर्म से हीन होता है उसके अर्थ और काम वन्ध्यासुत के समान होते हैं।

धर्म को परिभाषित करते हुये पुराणों में कहा गया है कि जो धारण करता है, जीवन की रक्षा करता है, अधोगति से बचाता है, वह धर्म है तथा अधोगति करने वाला अधर्म कहलाता है।

ब्रह्माण्ड पुराण में भी इसी तथ्य को दुहराया गया है। भविष्य पुराण के अनुसार समग्र संसार में स्थावर, जंगम जो कुछ भी है, उसे धारण करने वाला एकमात्र धर्म है। यह धर्म आदि और अन्त रहित शक्ति है।

इस प्रकार शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित आचार का प्रतिपादन करना ही धर्म है। उसके विरुद्ध आचरण अधर्म की कोटि में आता है। मनुष्य द्वारा रक्षित धर्म मनुष्य की रक्षा करता है, उसे उत्कर्ष प्रदान करता है –**धर्मो रक्षति रक्षितः।**

पुराण वेद को धर्म का मूल मानते हैं–**वेदो मूलं तु धर्माणाम्** (पद्म पुराण)। ब्रह्म वैवर्त पुराण, वामन पुराण आदि भी श्रुति को ही धर्म का मूल और प्राण मानते हैं। पुराण धर्म प्रधान ग्रन्थ हैं उनमें भक्ति, दर्शन, मूर्तिपूजा, नामसंकीर्तन तथा तीर्थों का महत्त्व आदि वर्णित है। भगवान् के विभिन्न अवतारों में पुराणों की महान् आस्था है। इन अवतारों का प्रयोजन, स्वरूप, उपासना की पद्धति आदि पुराणों मे प्रतिपादित है।

वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस युग में कर्मकाण्ड को अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता था। यज्ञों को सर्वप्रधान धर्म माना जाता था। बाद में ज्ञान के विकास के अनन्तर निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया जाने लगा। उपनिषदों में इसी निराकार ब्रह्म की उपासना पर अधिक जोर दिया गया है। वस्तुतः यह निराकार उपासना का मार्ग ज्ञानियों के लिये ही श्रेयस्कर था। सामान्य जनता इसके रहस्यों तथा गूढता और जटिलता को आत्मसात् करने में समर्थ नहीं थी। उसके लिये यह नीरस और शुष्क था। परिणामतः भक्ति का विकास हुआ, जिसमें सबको समान रूप से अपने आराध्य की आराधना का अधिकार प्राप्त था।

वेदों में निर्गुण निराकार की उपासना पर बल दिया गया था। निराकार ब्रह्म की वैदिक अवधारणा में पुराणों ने साकार ब्रह्मा की सगुण उपासना को जोड़ा। इस साकार पूजा परम्परा के कारण ही मूर्तिपूजा का प्रचार प्रसार हुआ, मूर्तियों का निर्माण हुआ। भक्तों ने अपने आराध्य के पौराणिक स्वरूप के आधार पर उनकी मनोहर छवि को निहारने के लिये मूर्तियों का निर्माण कराया, उनमें प्राणप्रतिष्ठा करके अपने आराध्य का साक्षात्कार किया। मन्दिरों का निर्माण करके उनमें भगवान् की मूर्ति स्थापित की गयी तथा भक्तों ने भक्ति से ओतप्रोत होकर उन मूर्तियों के सम्मुख आत्मसमर्पण किया।

पुराणों पर आधारित इस इकाई में आपने पौराणिक संस्कृति और सभ्यता से सम्बद्ध अनेक तथ्यों का संक्षेप में अध्ययन किया तथा उनके बारे में ज्ञान प्राप्त किया।

21.12 शब्दावली

धर्म – जो समग्र संसार को धारण करता है

अर्थ – पुरुषार्थ विशेष

काम – तृतीय पुरुषार्थ

मोक्ष	–	मानव जीवन का चरम पुरुषार्थ
कैवल्य	–	मोक्ष का अपर पर्याय
अपवर्ग	–	मोक्ष का नामान्तर
ब्राह्म	–	ब्रह्मा से सम्बन्धित
शैव	–	शिव से सम्बन्धित
वैष्णव	–	विष्णु से सम्बन्धित

21.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. पुराण विषयानुक्रमणी, राजबली पाण्डेय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1957
2. पुराण परिशीलन, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1970
3. भारतीय संस्कृति और कला, वाचस्पति गैरोला, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1973
4. भारतीय संस्कृति, राजकिशोर सिंह, आगरा, 1982

21.14 अभ्यास प्रश्न

1. महापुराणों की संख्या कितनी है ?
2. संस्कृति और सभ्यता को परिभाषित कीजिये।
3. पुराणों में प्राप्त भक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालिये।
4. पुराणों मे प्रतिपादित धर्म का स्वरूप समझाइये।
5. पौराणिक संस्कृति के प्रमुख तत्त्वों का उल्लेख कीजिये।